



Original Article

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था एवं आधुनिक न्याय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सत्येंद्र पासवान

सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग,
 किशोरी सिंहा महिला महाविद्यालय औरंगाबाद,
 मगध विश्वविद्यालय, गया, बिहार

Manuscript ID:
 IJAAR-140109

ISSN: 2347-7075
Impact Factor – 8.26

Volume – 14
Issue – 1
September- October 2026
Pp. 69 - 80

Submitted: 29 Aug 2026
Revised: 15 Sept 2026
Accepted: 30 Sept 2026
Published: 05 Oct 2026

Corresponding Author:
डॉ. सत्येंद्र पासवान

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI:
 10.5281/zenodo.23238141

DOI Link:
<https://doi.org/10.5281/zenodo.23238141>



Creative Commons



प्रस्तावना:

मानव समाज के विकास के साथ-साथ न्याय की आवश्यकता भी निरंतर अनुभव की जाती रही है। किसी भी सभ्य समाज की स्थिरता, शांति और प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि वहां की न्याय व्यवस्था कितनी प्रभावी, निष्पक्ष और जनहितकारी है। न्याय केवल अपराधियों को दंड देने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह समाज में व्यवस्था बनाए रखने, व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करने तथा सामाजिक संतुलन स्थापित करने का महत्वपूर्ण साधन भी है। जिस समाज में न्याय की व्यवस्था सुदृढ़ होती है, वहां नागरिकों का शासन और कानून के प्रति विश्वास बना रहता है तथा सामाजिक जीवन अधिक संगठित और सुरक्षित बनता है।

भारत का न्यायिक इतिहास अत्यंत प्राचीन, समृद्ध और गौरवपूर्ण रहा है। भारतीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ यहां न्याय संबंधी विचारों और व्यवस्थाओं का भी विकास हुआ। वैदिक काल से लेकर उत्तरवैदिक काल, महाजनपद युग, मौर्य काल, गुप्त काल तथा मध्यकालीन भारत तक न्याय व्यवस्था समाज और राज्य की एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में कार्य करती रही। प्राचीन भारतीय चिंतकों ने न्याय को केवल कानूनी विषय नहीं माना, बल्कि उसे धर्म, नैतिकता, कर्तव्य और लोककल्याण से जोड़कर देखा। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में धर्म का विशेष महत्व था। यहां धर्म का अर्थ किसी विशेष संप्रदाय से नहीं, बल्कि सत्य, न्याय, सदाचार और सामाजिक उत्तरदायित्व से था।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

डॉ. सत्येंद्र पासवान. (2026). प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था एवं आधुनिक न्याय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन. *International Journal of Advance and Applied Research*, 14(1), 69–80. <https://doi.org/10.5281/zenodo.23238141>



प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था के संबंध में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथ महत्वपूर्ण स्रोत माने जाते हैं। इन ग्रंथों में न्याय के सिद्धांतों, न्यायालयों की संरचना, न्यायाधीशों के कर्तव्यों, साक्ष्य प्रणाली, दंड व्यवस्था तथा विवाद निपटान की प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्राचीन भारत में राजा को न्याय का संरक्षक माना जाता था, किंतु उससे अपेक्षा की जाती थी कि वह धर्म और न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए निष्पक्ष निर्णय दे। स्थानीय स्तर पर ग्राम सभाएं, पंचायतें तथा अन्य संस्थाएं भी न्याय प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। इससे सामान्य लोगों को अपेक्षाकृत सरल और त्वरित न्याय प्राप्त हो जाता था।

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था का मूल उद्देश्य केवल अपराधियों को दंडित करना नहीं था, बल्कि समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करना और सामाजिक संतुलन बनाए रखना भी था। दंड को व्यवस्था बनाए रखने का साधन माना जाता था। न्यायिक निर्णयों में सामाजिक परिस्थितियों, नैतिक मूल्यों तथा लोकहित को भी ध्यान में रखा जाता था। इसी कारण प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था को केवल विधिक व्यवस्था न मानकर एक व्यापक सामाजिक और नैतिक व्यवस्था के रूप में देखा जाता है।

आधुनिक काल में भारत की न्याय व्यवस्था ने एक नए स्वरूप को ग्रहण किया। विशेष रूप से औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय न्याय प्रणाली में अनेक परिवर्तन हुए और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान के निर्माण के साथ न्याय व्यवस्था को लोकतांत्रिक और संवैधानिक आधार प्राप्त हुआ। वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था संविधान की सर्वोच्चता, विधि के शासन, समानता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता तथा मानवाधिकारों के

सिद्धांतों पर आधारित है। संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना को भारतीय राज्य का प्रमुख उद्देश्य माना गया है।

आधुनिक भारतीय न्यायपालिका स्वतंत्र एवं निष्पक्ष संस्था के रूप में कार्य करती है। सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय तथा अधीनस्थ न्यायालय मिलकर देश की न्यायिक व्यवस्था का संचालन करते हैं। वर्तमान न्याय प्रणाली में प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समान माना गया है तथा उसे न्याय प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। न्यायिक पुनरावलोकन, मौलिक अधिकारों की सुरक्षा, लोकहित याचिका, विधिक सहायता तथा अपील की व्यवस्था आधुनिक न्याय प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। इन व्यवस्थाओं ने न्याय को अधिक व्यापक, लोकतांत्रिक और जनोन्मुख बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

यद्यपि प्राचीन और आधुनिक न्याय व्यवस्थाओं के स्वरूप, संरचना और कार्यप्रणाली में पर्याप्त अंतर दिखाई देता है, फिर भी दोनों का मूल उद्देश्य न्याय की स्थापना और समाज में व्यवस्था बनाए रखना है। प्राचीन व्यवस्था धर्म, नैतिकता और परंपराओं पर आधारित थी, जबकि आधुनिक व्यवस्था संविधान, विधि और लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। दोनों व्यवस्थाओं की अपनी-अपनी विशेषताएं तथा सीमाएं हैं। एक ओर प्राचीन व्यवस्था में त्वरित न्याय, नैतिक अनुशासन और स्थानीय स्तर पर विवाद समाधान की व्यवस्था थी, वहीं दूसरी ओर आधुनिक व्यवस्था समानता, मानवाधिकार, न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा विधिक सुरक्षा जैसे सिद्धांतों को महत्व देती है।

वर्तमान समय में न्यायालयों में बढ़ते मुकदमों, न्याय में होने वाले विलंब तथा न्यायिक चुनौतियों के संदर्भ



में प्राचीन भारतीय न्याय परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन भी आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था के अनेक तत्व, जैसे मध्यस्थता, पंचायत आधारित विवाद समाधान, नैतिक उत्तरदायित्व तथा लोककल्याण की भावना आज भी प्रासंगिक हैं और न्याय व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक हो सकते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था एवं आधुनिक न्याय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इसके माध्यम से दोनों व्यवस्थाओं की मूल अवधारणाओं, संरचना, न्यायिक सिद्धांतों, दंड व्यवस्था, न्यायिक प्रक्रियाओं तथा उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि भारतीय न्याय परंपरा ने समय के साथ किस प्रकार विकास किया और वर्तमान न्याय व्यवस्था में प्राचीन भारतीय न्याय दर्शन के कौन-कौन से तत्व आज भी उपयोगी एवं प्रासंगिक बने हुए हैं।

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था:

प्राचीन भारतीय समाज में न्याय व्यवस्था सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण आधार थी। उस समय न्याय को केवल अपराध और दंड के संदर्भ में नहीं देखा जाता था, बल्कि उसे व्यक्ति, समाज और राज्य के बीच संतुलन बनाए रखने वाली व्यवस्था के रूप में समझा जाता था। प्राचीन भारतीय चिंतन में 'धर्म' का विशेष महत्व था। यहां धर्म का अर्थ केवल पूजा-पद्धति या धार्मिक विश्वास से नहीं था, बल्कि सत्य, कर्तव्य, सदाचार, सामाजिक उत्तरदायित्व और उचित आचरण से भी था। इसलिए प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था का आधार धर्म, नीति, परंपरा और लोकाचार का समन्वय था।

प्राचीन भारत में न्याय संबंधी विचारों का उल्लेख विभिन्न वैदिक एवं उत्तरवैदिक ग्रंथों में मिलता है। धर्मसूत्रों और स्मृतियों में सामाजिक व्यवहार, संपत्ति, ऋण, उत्तराधिकार, विवाह, अपराध तथा दंड आदि से संबंधित नियमों का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति और बृहस्पति स्मृति जैसे ग्रंथों में न्याय के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी प्राचीन भारतीय शासन और न्याय व्यवस्था को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है। अर्थशास्त्र में न्यायिक प्रक्रिया, अपराध, दंड, साक्ष्य, प्रशासन तथा राज्य के दायित्वों से संबंधित अनेक नियमों का उल्लेख मिलता है।

1. राजा और न्याय व्यवस्था:

प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था में राजा को न्याय का प्रमुख संरक्षक माना जाता था। राजा का दायित्व केवल राज्य की सुरक्षा और प्रशासन चलाना नहीं था, बल्कि प्रजा को न्याय प्रदान करना भी था। राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह व्यक्तिगत इच्छा के आधार पर नहीं, बल्कि धर्म और निर्धारित नियमों के अनुसार निर्णय करे। इस दृष्टि से राजा स्वयं भी एक निश्चित नैतिक और विधिक व्यवस्था के अधीन माना जाता था।

राजा की सहायता के लिए न्यायिक अधिकारियों और विद्वानों की व्यवस्था रहती थी। महत्वपूर्ण मामलों में अनुभवी व्यक्तियों तथा विधि के जानकारों से परामर्श लिया जाता था। न्याय करते समय मामले की प्रकृति, उपलब्ध साक्ष्य और संबंधित पक्षों की बातों पर विचार किया जाता था। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह था कि निर्णय केवल सत्ता के प्रभाव में न हो, बल्कि स्थापित नियमों और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर दिया जाए।



2. स्थानीय स्तर पर न्याय:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता स्थानीय स्तर पर विवादों के समाधान की परंपरा थी। ग्राम और समुदाय स्तर पर ऐसी संस्थाएं कार्य करती थीं जो स्थानीय विवादों को सुलझाने में सहायता करती थीं। ग्राम स्तर पर होने वाले छोटे-मोटे विवादों का समाधान स्थानीय स्तर पर ही किए जाने से लोगों को दूर स्थित सत्ता केंद्रों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था।

स्थानीय संस्थाओं में सामाजिक प्रतिष्ठा और अनुभव रखने वाले व्यक्तियों की भूमिका रहती थी। परिवार, संपत्ति, ऋण, सीमाओं तथा अन्य स्थानीय विवादों को आपसी समझ और सामाजिक मान्यताओं के आधार पर सुलझाने का प्रयास किया जाता था। इससे न्याय प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनी रहती थी।

3. न्याय के स्रोत:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में न्याय के अनेक आधार माने गए। धर्म, सामाजिक परंपरा, लोकाचार और शासकीय नियम इसके प्रमुख आधार थे। विभिन्न कालों में इन स्रोतों का महत्व परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहा। धर्मशास्त्रीय परंपरा में स्थापित नियमों के साथ-साथ स्थानीय प्रथाओं को भी महत्व दिया जाता था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य द्वारा बनाए गए नियमों और प्रशासनिक व्यवस्था को विशेष महत्व दिया गया है। इससे यह पता चलता है कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था केवल धार्मिक नियमों तक सीमित नहीं थी, बल्कि शासन और प्रशासन से जुड़े व्यावहारिक नियम भी उसमें शामिल थे।

4. साक्ष्य और न्यायिक प्रक्रिया:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में साक्ष्य का महत्वपूर्ण स्थान था। किसी विवाद या अपराध के संबंध में

निर्णय देते समय गवाहों, दस्तावेजों, परिस्थितियों और अन्य उपलब्ध प्रमाणों पर विचार किया जाता था। न्यायाधीश या संबंधित अधिकारी से अपेक्षा की जाती थी कि वह दोनों पक्षों को सुनकर तथा उपलब्ध तथ्यों की जांच करके निर्णय दे।

कौटिल्य ने न्यायिक प्रक्रिया में साक्ष्य और गवाही के महत्व पर विशेष ध्यान दिया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में न्यायिक निर्णय केवल अनुमान या व्यक्तिगत इच्छा पर आधारित नहीं होते थे, बल्कि उपलब्ध प्रमाणों को भी महत्व दिया जाता था।

5. दंड व्यवस्था:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में दंड को सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का महत्वपूर्ण साधन माना गया था। अपराध की प्रकृति और उसकी गंभीरता के अनुसार दंड निर्धारित किया जाता था। दंड का उद्देश्य केवल अपराधी को कष्ट देना नहीं था, बल्कि समाज में भय और अनुशासन बनाए रखना तथा भविष्य में अपराधों को रोकना भी था।

अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार के अपराधों और उनके लिए निर्धारित दंडों का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में अपराध और दंड के बीच एक निश्चित संबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया था। हालांकि दंड व्यवस्था में सामाजिक स्थिति के आधार पर अंतर भी दिखाई देता है, जिसे आधुनिक समानता के सिद्धांत की दृष्टि से अलग रूप में समझना आवश्यक है।

6. प्राचीन न्याय व्यवस्था की विशेषताएँ और सीमाएँ:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं में धर्म और नैतिकता पर आधारित न्याय, स्थानीय स्तर पर विवादों का समाधान, सामाजिक



उत्तरदायित्व, राजा का न्यायिक दायित्व तथा दंड के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का प्रयास शामिल था। इसमें न्याय को समाज से अलग कोई स्वतंत्र संस्था न मानकर व्यापक सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा माना गया।

इसके साथ ही इस व्यवस्था की कुछ सीमाएं भी थीं। प्राचीन समाज में सामाजिक वर्गीकरण का प्रभाव न्याय और दंड व्यवस्था पर दिखाई देता था। स्त्रियों तथा विभिन्न सामाजिक समूहों की स्थिति भी आधुनिक समानता की अवधारणा के अनुरूप नहीं थी। इसलिए प्राचीन न्याय व्यवस्था का मूल्यांकन उसके तत्कालीन सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाना आवश्यक है।

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था:

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप मुख्यतः भारतीय संविधान पर आधारित है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में ऐसी न्याय व्यवस्था को स्वीकार किया जिसका उद्देश्य नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और न्याय प्रदान करना है। संविधान ने न्यायपालिका को स्वतंत्र स्थान प्रदान किया तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व न्यायपालिका को सौंपा।

आधुनिक न्याय व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कानून की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है। राज्य का कोई भी व्यक्ति, संस्था या अधिकारी कानून से ऊपर नहीं है। शासन के सभी अंगों को संवैधानिक सीमाओं के भीतर कार्य करना होता है। न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है कि वह ऐसे कानूनों या सरकारी कार्यों की समीक्षा कर सके जो संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध हों।

1. न्यायपालिका की संरचना:

भारत की न्यायिक व्यवस्था एक संगठित और बहुस्तरीय संरचना पर आधारित है। इसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय है। इसके नीचे राज्यों में उच्च न्यायालय तथा उनके अधीन विभिन्न स्तरों के अधीनस्थ न्यायालय कार्य करते हैं।

भारत की न्यायिक संरचना को सामान्य रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है:

1. सर्वोच्च न्यायालय
2. उच्च न्यायालय
3. अधीनस्थ न्यायालय

सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है और संविधान की व्याख्या तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। उच्च न्यायालय राज्यों के स्तर पर न्यायिक कार्य करते हैं। इनके अधीन जिला एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालय कार्य करते हैं, जहां अधिकांश सामान्य दीवानी और आपराधिक मामलों की सुनवाई होती है।

2. विधि का शासन:

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था का एक प्रमुख आधार 'विधि का शासन' है। इसका अर्थ है कि देश में शासन किसी व्यक्ति की इच्छा के अनुसार नहीं, बल्कि कानून के अनुसार संचालित होगा। प्रत्येक नागरिक कानून की दृष्टि में समान है और किसी व्यक्ति के साथ केवल उसकी सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक स्थिति के आधार पर अलग व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए।

संविधान का अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण की व्यवस्था करता है। यह सिद्धांत आधुनिक न्याय व्यवस्था को प्राचीन व्यवस्था से अलग करता है, क्योंकि आधुनिक संवैधानिक



व्यवस्था में समानता को एक मूलभूत अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है।

3. मौलिक अधिकार और न्याय:

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का विशेष महत्व है। संविधान नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता तथा अन्य महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करता है। यदि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो वह न्यायालय की शरण ले सकता है।

इस प्रकार आधुनिक न्याय व्यवस्था में न्याय केवल विवाद के समाधान तक सीमित नहीं है। न्यायपालिका नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा भी करती है। यही कारण है कि भारतीय न्यायपालिका को संविधान और नागरिक स्वतंत्रताओं के संरक्षण की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी प्राप्त है।

4. न्यायपालिका की स्वतंत्रता:

न्यायपालिका की स्वतंत्रता आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। न्यायालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे बिना किसी बाहरी दबाव के कानून और संविधान के अनुसार निर्णय दें। न्यायपालिका की स्वतंत्रता नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक है।

यदि न्यायपालिका स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करेगी, तो सत्ता के अन्य अंगों द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग की संभावना बढ़ सकती है। इसलिए आधुनिक भारतीय व्यवस्था में न्यायपालिका को एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था के रूप में विकसित किया गया है।

5. न्यायिक पुनरावलोकन:

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता न्यायिक पुनरावलोकन है। इसके माध्यम से न्यायालय यह देख सकते हैं कि विधायिका या

कार्यपालिका द्वारा किया गया कोई कार्य संविधान के अनुरूप है या नहीं। यदि कोई कानून या सरकारी कार्रवाई संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करती है, तो न्यायालय उसके संबंध में उचित निर्णय दे सकता है।

न्यायिक पुनरावलोकन ने भारतीय लोकतंत्र में संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके माध्यम से नागरिक अधिकारों और संवैधानिक मूल्यों की रक्षा को मजबूती मिली है।

6. आधुनिक दंड व्यवस्था:

आधुनिक न्याय व्यवस्था में अपराध के लिए दंड निर्धारित करने के साथ-साथ न्याय, अपराध की प्रकृति, पीड़ित के अधिकार तथा समाज की सुरक्षा जैसे पक्षों को भी ध्यान में रखा जाता है। आधुनिक आपराधिक न्याय व्यवस्था में दंड के साथ सुधार और पुनर्वास की अवधारणा को भी महत्व मिला है।

आधुनिक व्यवस्था में यह सिद्धांत महत्वपूर्ण है कि किसी व्यक्ति को अपराध सिद्ध होने से पहले अपराधी नहीं माना जाना चाहिए। उसे अपना पक्ष रखने, वकील की सहायता लेने और उच्च न्यायालय में अपील करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार न्यायिक प्रक्रिया व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने का प्रयास करती है।

7. विधिक सहायता और न्याय तक पहुंच:

आधुनिक न्याय व्यवस्था का उद्देश्य केवल न्यायालयों की स्थापना करना नहीं, बल्कि सामान्य व्यक्ति तक न्याय की पहुंच सुनिश्चित करना भी है। आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के लिए विधिक सहायता की व्यवस्था इसी उद्देश्य से की गई है। लोक अदालत, मध्यस्थता तथा अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान की व्यवस्थाएं भी न्याय को अपेक्षाकृत सरल और सुलभ बनाने का प्रयास करती हैं।



हालांकि आधुनिक न्याय व्यवस्था अधिक संगठित और संवैधानिक है, फिर भी इसके सामने अनेक चुनौतियां हैं। न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या, न्याय प्राप्त करने में लगने वाला समय, न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता तथा आर्थिक लागत जैसे प्रश्न आज भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए आधुनिक न्याय व्यवस्था में निरंतर सुधार की आवश्यकता बनी हुई है।

8. आधुनिक न्याय व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ:

आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्न रूप में समझा जा सकता है:

1. संविधान की सर्वोच्चता
2. विधि का शासन
3. कानून के समक्ष समानता
4. स्वतंत्र न्यायपालिका
5. मौलिक अधिकारों की सुरक्षा
6. न्यायिक पुनरावलोकन
7. अपील की व्यवस्था
8. विधिक सहायता
9. वैकल्पिक विवाद समाधान
10. नागरिक अधिकारों और मानव गरिमा की रक्षा

प्राचीन एवं आधुनिक न्याय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन:

प्राचीन और आधुनिक दोनों न्याय व्यवस्थाओं का उद्देश्य न्याय की स्थापना है, किंतु उनके आधार, संरचना और कार्यप्रणाली में अंतर है।

प्राचीन व्यवस्था धर्म और परंपराओं पर आधारित थी, जबकि आधुनिक व्यवस्था संविधान और विधि पर आधारित है। प्राचीन काल में राजा न्याय का केंद्र था, जबकि वर्तमान में स्वतंत्र न्यायपालिका न्याय प्रदान करती

है। प्राचीन व्यवस्था में स्थानीय स्तर पर त्वरित न्याय की व्यवस्था थी, जबकि आधुनिक व्यवस्था में विस्तृत न्यायिक प्रक्रिया अपनाई जाती है।

प्राचीन न्याय व्यवस्था में नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व पर विशेष बल दिया जाता था। आधुनिक न्याय व्यवस्था समानता, मानवाधिकार और संवैधानिक मूल्यों को प्राथमिकता देती है। दंड व्यवस्था में भी अंतर दिखाई देता है। वर्तमान व्यवस्था अपराधी के सुधार और पुनर्वास पर भी ध्यान देती है।

प्राचीन न्याय व्यवस्था की वर्तमान प्रासंगिकता:

आज भी प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था के अनेक तत्व प्रासंगिक हैं। ग्राम न्यायालय, लोक अदालत, मध्यस्थता और पंचाट जैसी व्यवस्थाएँ स्थानीय स्तर पर त्वरित न्याय उपलब्ध कराने में सहायक हैं। न्याय में नैतिकता, निष्पक्षता और लोककल्याण की भावना आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी प्राचीन काल में थी।

वर्तमान न्यायालयों में लंबित मामलों की बढ़ती संख्या को देखते हुए वैकल्पिक विवाद निवारण प्रणाली का महत्व बढ़ गया है। इस संदर्भ में प्राचीन भारतीय न्याय परंपरा उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान करती है।

निष्कर्ष:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था और आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था दोनों भारतीय न्यायिक परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। प्राचीन व्यवस्था ने न्याय, धर्म और नैतिकता के सिद्धांतों को विकसित किया, जबकि आधुनिक व्यवस्था ने समानता, स्वतंत्रता, मानवाधिकार और संवैधानिक शासन को न्याय का आधार बनाया।



यद्यपि आधुनिक न्याय व्यवस्था अधिक विकसित और लोकतांत्रिक है, फिर भी प्राचीन भारतीय न्याय दर्शन के अनेक सिद्धांत आज भी उपयोगी और प्रासंगिक हैं। दोनों व्यवस्थाओं का समन्वित अध्ययन भारतीय न्याय प्रणाली की ऐतिहासिक यात्रा को समझने में सहायक है तथा भविष्य में न्याय व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है।

लिका में सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय तथा अधीनस्थ न्यायालय शामिल हैं। न्यायपालिका की स्वतंत्रता आधुनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है।

आधुनिक न्याय व्यवस्था में विधि का शासन सर्वोपरि माना जाता है। किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के बिना दंडित नहीं किया जा सकता। मानवाधिकारों की रक्षा, विधिक सहायता, अपील का अधिकार तथा न्यायिक पुनरावलोकन जैसी व्यवस्थाएँ आधुनिक न्याय प्रणाली को अधिक व्यापक बनाती हैं। संविधान का अनुच्छेद 14 सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है और न्याय को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आधारों पर सुनिश्चित करने का प्रयास करता है।

तुलनात्मक अध्ययन:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था और आधुनिक न्याय व्यवस्था दोनों का उद्देश्य समाज में न्याय स्थापित करना है, किंतु उनके आधार और कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण अंतर दिखाई देता है।

प्राचीन व्यवस्था में न्याय का आधार धर्म, परंपरा और सामाजिक मर्यादा थी, जबकि आधुनिक व्यवस्था संविधान और विधिक प्रावधानों पर आधारित है। प्राचीन काल में राजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी होता था, जबकि

वर्तमान में स्वतंत्र न्यायपालिका न्याय प्रदान करती है। प्राचीन व्यवस्था में सामाजिक स्थिति का प्रभाव कई बार न्याय और दंड पर दिखाई देता था, जबकि आधुनिक व्यवस्था सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करती है।

प्राचीन न्याय प्रणाली अपेक्षाकृत सरल, स्थानीय और त्वरित थी। पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से विवादों का शीघ्र समाधान किया जाता था। इसके विपरीत आधुनिक न्याय व्यवस्था अधिक औपचारिक, विस्तृत और विधिक प्रक्रियाओं पर आधारित है। इससे न्याय अधिक संरक्षित और निष्पक्ष होता है, किंतु कई बार न्याय प्राप्त करने में अधिक समय लग जाता है।

दंड व्यवस्था में भी अंतर दिखाई देता है। प्राचीन व्यवस्था में दंड का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना था, जबकि आधुनिक व्यवस्था में दंड के साथ-साथ अपराधी के सुधार और पुनर्वास पर भी बल दिया जाता है।

प्राचीन न्याय व्यवस्था की वर्तमान प्रासंगिकता:

यद्यपि आज की न्याय व्यवस्था आधुनिक संवैधानिक मूल्यों पर आधारित है, फिर भी प्राचीन भारतीय न्याय परंपरा के अनेक तत्व आज भी प्रासंगिक हैं। लोक अदालतें, ग्राम न्यायालय, मध्यस्थता तथा वैकल्पिक विवाद निवारण जैसी व्यवस्थाएँ प्राचीन भारतीय परंपराओं से प्रेरित मानी जा सकती हैं। न्याय में नैतिकता, निष्पक्षता और लोककल्याण की भावना आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी प्राचीन काल में थी।

निष्कर्ष:

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था और आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट



करता है कि न्याय की अवधारणा किसी एक समय या व्यवस्था तक सीमित नहीं रही है, बल्कि समाज की आवश्यकताओं, परिस्थितियों और मूल्यों के साथ निरंतर विकसित होती रही है। भारत में न्याय की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वैदिक काल से लेकर धर्मशास्त्रों, स्मृतियों और कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक न्याय को केवल विवादों के निपटारे का साधन नहीं माना गया, बल्कि उसे सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता, कर्तव्य और लोककल्याण से जोड़कर देखा गया। प्राचीन भारतीय चिंतन में न्याय का उद्देश्य समाज में संतुलन बनाए रखना, व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा राज्य में शांति और व्यवस्था कायम रखना था। राजा को न्याय का प्रमुख संरक्षक माना गया, लेकिन उसके लिए भी धर्म और स्थापित सामाजिक नियमों का पालन आवश्यक समझा गया। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में शासन और न्याय के संबंधों के साथ-साथ नैतिक उत्तरदायित्व को विशेष महत्व प्राप्त था।

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि न्याय को सामाजिक जीवन से अलग करके नहीं देखा जाता था। परिवार, ग्राम और समुदाय के स्तर पर उत्पन्न होने वाले अनेक विवादों का समाधान स्थानीय स्तर पर ही करने की परंपरा रही। इससे सामान्य लोगों को अपने विवादों के समाधान के लिए दूर नहीं जाना पड़ता था और सामाजिक संबंधों को बनाए रखते हुए विवादों को समाप्त करने का प्रयास किया जाता था। न्याय के निर्धारण में धर्म, लोकाचार, प्रचलित परंपराओं, साक्ष्य और सामाजिक मान्यताओं का महत्व था। इस व्यवस्था में दंड का उद्देश्य केवल अपराधी को कष्ट देना नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था और अनुशासन की रक्षा करना भी था।

इस प्रकार न्याय, दंड और लोककल्याण के बीच एक गहरा संबंध स्थापित किया गया था।

फिर भी प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था को उसकी ऐतिहासिक सीमाओं के साथ समझना आवश्यक है। उस समय का समाज आधुनिक लोकतांत्रिक और समानतावादी समाज से भिन्न था। सामाजिक स्तर, वर्ण, जाति और स्थिति के आधार पर व्यवहार तथा दंड में अंतर के उदाहरण मिलते हैं। महिलाओं और कुछ सामाजिक समूहों की स्थिति भी आधुनिक संवैधानिक समानता की कसौटी पर पूरी तरह समान नहीं थी। इसलिए प्राचीन न्याय व्यवस्था के सकारात्मक पक्षों का मूल्यांकन करते समय उसकी सीमाओं को नजरअंदाज करना उचित नहीं होगा। इतिहास के संदर्भ में देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उस व्यवस्था ने अपने समय की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप न्याय और शासन के अनेक महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित किए, लेकिन आधुनिक मानवाधिकार और समानता की अवधारणाओं के विकास के बाद न्याय की कसौटियाँ भी व्यापक हुईं।

स्वतंत्र भारत की आधुनिक न्याय व्यवस्था ने न्याय की अवधारणा को एक नए संवैधानिक आधार पर स्थापित किया। भारतीय संविधान ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को राज्य व्यवस्था के मूल उद्देश्यों में स्थान दिया। समानता, स्वतंत्रता, विधि का शासन, मौलिक अधिकार, न्यायिक स्वतंत्रता और मानव गरिमा आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था के प्रमुख आधार बने। सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों की संरचना के माध्यम से न्याय प्रदान करने की संस्थागत व्यवस्था विकसित हुई। आधुनिक न्याय व्यवस्था में किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, जाति, धर्म, लिंग या आर्थिक स्थिति के आधार पर कानून के सामने अलग व्यवहार को स्वीकार नहीं किया जाता। इस दृष्टि से आधुनिक न्याय



व्यवस्था प्राचीन व्यवस्था की तुलना में अधिक व्यापक, अधिकार आधारित और लोकतांत्रिक स्वरूप रखती है।

आधुनिक न्याय व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि न्यायपालिका को संविधान की रक्षा करने वाली संस्था के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त है। न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से न्यायालय यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि विधायिका और कार्यपालिका द्वारा किए गए कार्य संविधान के अनुरूप हों। मौलिक अधिकारों की रक्षा, विधिक सहायता, लोक अदालत, मध्यस्थता तथा अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान के माध्यमों ने न्याय तक पहुंच को व्यापक बनाने का प्रयास किया है। आधुनिक व्यवस्था में दंड के संबंध में भी केवल प्रतिशोध की भावना को पर्याप्त नहीं माना जाता, बल्कि अपराध की परिस्थितियों, पीड़ित के हित, समाज की सुरक्षा तथा अपराधी के सुधार और पुनर्वास जैसे पक्षों पर भी विचार किया जाता है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो प्राचीन और आधुनिक न्याय व्यवस्थाओं में अनेक मौलिक समानताएँ भी दिखाई देती हैं। दोनों व्यवस्थाओं का मूल उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था, शांति और न्याय की स्थापना करना है। दोनों में ही न्याय प्रदान करने वाली संस्थाओं की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। दोनों व्यवस्थाओं में साक्ष्य, गवाही और तथ्यों के आधार पर विवादों के समाधान का महत्व रहा है। इसी प्रकार अपराध और सामाजिक अव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए दंड की आवश्यकता दोनों व्यवस्थाओं में स्वीकार की गई। अंतर मुख्यतः न्याय के आधार, संस्थागत स्वरूप, अधिकारों की व्यापकता और कानून की प्रकृति में दिखाई देता है। प्राचीन व्यवस्था में धर्म, परंपरा, लोकाचार और राजधर्म का प्रभाव अधिक था, जबकि आधुनिक व्यवस्था संविधान और विधि

पर आधारित है। प्राचीन व्यवस्था में सामाजिक स्थिति का प्रभाव दिखाई देता है, जबकि आधुनिक व्यवस्था समानता और मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता देती है।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि आधुनिक न्याय व्यवस्था का विकास अतीत की पूर्ण अस्वीकृति के आधार पर नहीं हुआ है। भारतीय न्यायिक चिंतन में न्याय, कर्तव्य, उत्तरदायित्व, लोककल्याण और सामाजिक संतुलन जैसी अवधारणाएँ आज भी किसी न किसी रूप में दिखाई देती हैं। आधुनिक न्याय व्यवस्था ने इन मूल्यों को संवैधानिक अधिकारों और विधि के शासन के साथ जोड़कर अधिक व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। इसलिए प्राचीन न्याय व्यवस्था से आज के लिए प्रेरणा लेते समय उसके मूल नैतिक पक्षों को समझना आवश्यक है, न कि उसकी प्रत्येक व्यवस्था को वर्तमान समाज में उसी रूप में लागू करने का प्रयास करना।

विशेष रूप से त्वरित न्याय की आवश्यकता दोनों कालखंडों को जोड़ने वाला महत्वपूर्ण पक्ष है। प्राचीन भारतीय व्यवस्था में स्थानीय स्तर पर विवादों के समाधान की परंपरा के कारण अनेक मामलों का निपटारा अपेक्षाकृत निकट स्तर पर किया जाता था। वर्तमान समय में न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या, न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता और समय की अधिकता के कारण न्याय तक शीघ्र पहुंच एक महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है। ऐसे में लोक अदालत, मध्यस्थता, सुलह और अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणालियों को अधिक प्रभावी बनाना उपयोगी हो सकता है। यहां प्राचीन स्थानीय न्याय परंपराओं से प्रेरणा ली जा सकती है, हालांकि आधुनिक संवैधानिक अधिकारों और विधिक मानकों की पूर्ण सुरक्षा के साथ।

इसी प्रकार प्राचीन भारतीय न्याय चिंतन में लोककल्याण और शासक के उत्तरदायित्व को विशेष महत्व



दिया गया था। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी राज्य का उद्देश्य केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखना नहीं, बल्कि नागरिकों के अधिकारों, स्वतंत्रता, सम्मान और सामाजिक सुरक्षा की रक्षा करना है। इस दृष्टि से प्राचीन राजधर्म की लोककल्याणकारी भावना को आधुनिक संवैधानिक शासन की अवधारणा के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। न्याय तभी सार्थक माना जा सकता है जब वह समाज के सामान्य व्यक्ति तक पहुंच सके और उसे अपने अधिकारों की रक्षा का वास्तविक अवसर प्रदान करे।

अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि न्याय केवल न्यायालयों और कानूनों का विषय नहीं है। न्याय का संबंध सामाजिक चेतना, नैतिक मूल्यों, प्रशासनिक उत्तरदायित्व और नागरिक कर्तव्यों से भी है। कानून कितना ही अच्छा क्यों न हो, यदि उसके प्रति सामाजिक सम्मान और संस्थाओं के प्रति विश्वास नहीं होगा तो न्याय की प्रक्रिया प्रभावी नहीं हो सकती। प्राचीन भारतीय चिंतन में न्याय को नैतिक जीवन से जोड़ने की जो परंपरा दिखाई देती है, वह इस संदर्भ में आज भी विचारणीय है। आधुनिक व्यवस्था में संवैधानिक मूल्यों के साथ नैतिक उत्तरदायित्व और सामाजिक संवेदनशीलता का समावेश न्याय व्यवस्था को अधिक मानवीय बना सकता है।

वर्तमान समय में न्याय व्यवस्था के सामने लंबित मामलों का बोझ, न्याय प्राप्त करने में लगने वाला समय, आर्थिक कठिनाई, विधिक जानकारी का अभाव और ग्रामीण तथा कमजोर वर्गों तक न्याय की सीमित पहुंच जैसी अनेक चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों का समाधान केवल न्यायालयों की संख्या बढ़ाने से संभव नहीं है। इसके लिए न्यायिक प्रक्रिया को सरल और सुगम बनाना, विधिक सहायता को प्रभावी करना, वैकल्पिक विवाद समाधान को मजबूत करना, तकनीक का उचित उपयोग करना और आम

नागरिक में विधिक जागरूकता बढ़ाना भी आवश्यक है। न्याय व्यवस्था में सुधार करते समय यह ध्यान रखना होगा कि प्रक्रिया की गति बढ़ाने के साथ न्याय की निष्पक्षता और गुणवत्ता से समझौता न हो।

अंततः कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था भारतीय सभ्यता की उस दीर्घकालीन परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें न्याय को धर्म, कर्तव्य, सामाजिक उत्तरदायित्व और लोककल्याण से जोड़ा गया था। आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था ने इसी व्यापक न्याय-बोध को संवैधानिक लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्रता, मानवाधिकार और विधि के शासन के आधार पर नया स्वरूप प्रदान किया है। दोनों व्यवस्थाओं के बीच अंतर स्पष्ट हैं, लेकिन उनके मूल उद्देश्य में सामाजिक शांति, व्यवस्था और न्याय की स्थापना जैसी समानताएँ भी मौजूद हैं।

इसलिए प्राचीन और आधुनिक न्याय व्यवस्था को एक-दूसरे के विरोधी रूप में देखने के बजाय उन्हें भारतीय न्यायिक विकास की निरंतर यात्रा के दो महत्वपूर्ण चरणों के रूप में समझना अधिक उचित होगा। प्राचीन परंपरा से नैतिकता, उत्तरदायित्व, लोककल्याण और त्वरित विवाद समाधान जैसे मूल्यों को ग्रहण किया जा सकता है, जबकि आधुनिक संविधान से समानता, स्वतंत्रता, मानव गरिमा, मौलिक अधिकार और विधि के शासन की मजबूत आधारभूमि प्राप्त होती है। इन दोनों के सकारात्मक पक्षों का विवेकपूर्ण समन्वय भारतीय न्याय व्यवस्था को अधिक संवेदनशील, सुलभ, निष्पक्ष और जनोन्मुख बनाने में सहायक हो सकता है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय न्याय परंपरा का अध्ययन केवल अतीत को जानने का माध्यम नहीं है, बल्कि वर्तमान न्याय व्यवस्था को अधिक प्रभावी और मानवीय बनाने के लिए आवश्यक वैचारिक आधार भी प्रदान करता है।



संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, अनुवाद: आर. शमाशास्त्री, मैसूर, 1929, पृ. 15-28।
2. मनु, मनुस्मृति, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2018, पृ. 35-48।
3. याज्ञवल्क्य, याज्ञवल्क्य स्मृति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2008, पृ. 112-126।
4. पी. वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे, 1975, पृ. 450-468।
5. आर. एस. शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1996, पृ. 85-101।
6. डी. डी. बसु, भारत के संविधान का परिचय, लेक्सिसनेक्सिस, नई दिल्ली, 2019, पृ. 42-58।
7. जे. एन. पांडेय, भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ एजेंसी, प्रयागराज, 2021, पृ. 75-94।
8. वी. एन. शुक्ल, भारत का संविधान, ईस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ, 2019, पृ. 118-135।